17 अक्टूबर 2006, कुल पृष्ठ : 8, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

जैन
पथप्रदर्शक

ए-4, बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)

नैतिक एवं सामाजिक चेतना का अग्रदूत निष्पक्ष पाक्षिक

सर्व समाधान कारक तो अपना आत्मा है, जो स्वयं ज्ञानस्वरूप है। दूसरों को देखना, सुनना आदि तो निमित्त मात्र हैं।

-ती.महावीर और सर्वोदय तीर्थ,पृष्ठ :62

वर्ष : 29, अंक : 14 सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** आजीवन शुल्क : 251 रुपये

अक्टूबर (द्वितीय), 06 प्रबन्ध सम्पादक : **पं. संजीवकुमार गोधा व पं. जितेन्द्र वि. राठी** वार्षिक शुल्क : 25 रुपये

नौवाँ आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर सानन्द सम्पन्न

जयपुर (राज.) : पण्डित टोडरमल सर्वोदय ट्रस्ट द्वारा प्रतिवर्ष की भाँति इस वर्ष भी ज्ञानतीर्थ श्री टोडरमल स्मारक भवन में दिनांक 28 सितम्बर से 7 अक्टूबर, 2006 तक नौवें आध्यात्मिक शिक्षण-शिविर का आयोजन किया गया । दिनांक 28 सितम्बर को हुये शिविर के उद्घाटन समाचार विगत अंक में विस्तार से प्रकाशित किये जा चुके हैं।

शिविर में प्रतिदिन आध्यात्मिकसत्पुरुष श्री कानजीस्वामी के टेप व सी. डी प्रवचनों के पश्चात् प्रतिदिन प्रात: अन्तर्राराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त तार्किक विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के समयसार-पूर्वरंग पर मार्मिक प्रवचन हुये।

प्रतिदिन **रात्रि में मुख्य प्रवचन** के रूप में पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री, देवलाली के मोक्षमार्ग प्रकाशक के सातवें अधिकार पर मार्मिक प्रवचन के उपरान्त डॉ. भारिल्ल के वी.सी.डी. प्रवचनों का प्रसारण किया जाता था।

रात्रिकालीन मुख्य प्रवचन से पूर्व पण्डित सुदीपजी जैन बीना के तीन प्रवचन एवं पण्डित सुदर्शनजी जैन बीना के दो प्रवचनों के अतिरिक्त डॉ. श्रीयांसजी सिंघई जयपुर, पण्डित संजयजी शास्त्री भोगाँव, पण्डित अध्यात्मप्रकाशजी भारिल्ल मुम्बई, पण्डित रमेशचन्दजी जैन लवाण के सुश्राव्य प्रवचनों का लाभ मिला।

प्रात: 5.30 बजे की **प्रौढ़ कक्षा** में पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा इन्दौर, पण्डित सुदीपजी बीना, पण्डित सुदर्शनजी बीना व पण्डित अशोकजी लुहाड़िया मंगलायतन का लाभ प्राप्त हुआ।

शिक्षण कक्षाओं में पण्डित रतनचन्दजी भारिल्ल द्वारा निमित्तोपादान, ब्र. यशपालजी जैन द्वारा गुणस्थान विवेचन, पण्डित अभयकुमारजी शास्त्री द्वारा नयचक्र, पण्डित शांतिकुमारजी पाटील द्वारा मोक्षमार्ग प्रकाशक, डॉ. नरेन्द्रकुमारजी शास्त्री द्वारा छहढ़ाला, पण्डित संजीवकुमारजी गोधा द्वारा क्रमबद्धपर्याय एवं पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री द्वारा सात तत्त्व सम्बन्धी भूल की कक्षायें ली गई।

दोपहर की व्याख्यानमाला में पण्डित कमलचन्दजी जैन पिड़ावा, डॉ. सुदर्शनलालजी जैन वाराणसी, पण्डित खेमचन्दजी उदयपुर, पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री, पण्डित गौरवजी शास्त्री इन्दौर एवं पण्डित प्रवीणजी शास्त्री के विविध विषयों पर प्रवचनों का लाभ मिला।

व्याख्यानमाला से पूर्व बाबू जुगलकिशोरजी युगल एवं डॉ. भारिल्ल के सी. डी. प्रवचनों का प्रसारण किया जाता था।

दिनांक 4 अक्टूबर को श्री टोडरमल दिग. जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर के छात्रों द्वारा **जैनदर्शन के मूलभूत सिद्धान्त** विषय पर मार्मिक गोष्ठी का आयोजन किया गया; जिसकी अध्यक्षता श्री महावीरप्रसादजी सरावगी कोलकाता ने की।

शिविर में नवलब्धी विधान के आयोजनकर्त्ता श्री दिग. जैन मुमुक्षु मण्डल कोलकाता था।

शिविर के मध्य डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल के प्रवचनों की डी. वी. डी का लोकार्पण किया गया; मात्र 100/- रुपये में मिलनेवाली इस डी.वी.डी. में 215 घंटे के प्रवचन संकलित हैं।

6 अक्टूबर को समापन समारोह की अध्यक्षता श्री विमलचन्दजी जैन दिल्ली ने की। मुख्य अतिथि के रूप में श्री बालचन्दजी सुरेशजी पाटनी कोलकाता एवं श्री दिलीपभाई शाह मुम्बई मंचासीन थे।

शिविर की आर्थिक रिपोर्ट पण्डित पूनमचन्दजी छाबड़ा ने एवं व्यवस्थागत रिपोर्ट पण्डित पीयूषकुमारजी शास्त्री ने प्रस्तुत की। सभा का संचालन पण्डित शांतिकुमारजी पाटील ने किया। शिविर में कुल 666 साधर्मियों ने धर्मलाभ लिया। 58 हजार रुपयों का सत्साहित्य तथा 8872 घंटों के सी.डी.व ऑडियो कैसिट्स घर-घर पहुँचे। ●

अत्यन्त मंद बुद्धि भी समझ सकें ...

डॉ. भारिल्ल द्वारा लिखित **समयसार** की **ज्ञायकभावप्रबोधिनी टीका** को पढ़कर **श्री हुलासमलजी कासलीवाल, कोलकाता** से लिखते हैं -

''मैंने उपरोक्त ग्रन्थ आद्योपान्त पूरे मनोयोग से पढ़ा है। आपने आचार्यवर के सूत्रों की व आचार्य अमृतचन्द्रस्वामी की टीका का बहुत सरल भाषा में ऐसा स्पष्टीकरण कर दिया है कि उसके भावों को मेरे जैसे मंद बुद्धि भी समझ सकते हैं। इससे आपने इसे पढनेवाले मुमुक्षुओं का बहुत बड़ा उपकार किया है। आप इसीतरह दीर्घकाल तक धर्म की सेवा करते रहें।

भगवान आपको स्वस्थ और चिरंजीवी रखे ह्न यही मेरी भावना है।''

सम्पादकीय –

ये तो सोचा ही नहीं

– रतनचन्द भारिल्ल

१४. किसने देखे नरक ..... ?

विज्ञान ने सोचा –''भारतीय भूमि पर जन्मे मानवों को धर्म का विशेष ज्ञान हो या न हो, वे धर्म के सही स्वरूप को जानते हों या न जानते हों, वे दुनिया की दृष्टि में धर्मात्मा हों या न हों; पर धर्म करने की भावना तो प्राय: सभी में रहती ही है। अपनी–अपनी समझ के अनुसार अधिकांश नर–नारी धर्मसाधन करते भी हैं।

यह सब देखकर ऐसा लगता है कि अभी धर्म की भावना जिन्दा तो है, **आत्मा के किसी न किसी कोने में धर्म संस्कार के बीज तो हैं, उन्हें मात्र उपयुक्त विवेकरूपी खाद–पानी की जरूरत है, सन्मार्ग दिखाकर सही दिशा देने की जरूरत है।**

भाई, धर्म प्रदर्शन की वस्तु नहीं है, अपनी मान–प्रतिष्ठा के लिए धर्मायतनों के निर्माण में धन दे देने मात्र से धर्म होने वाला नहीं है। उसके लिए स्वयं को धर्म ग्रन्थों का अध्ययन करना होगा। आत्मा–परमात्मा के स्वरूप को एवं ऑटोमेटिक विश्वव्यवस्था को समझकर पर–पदार्थों से मोह–राग–द्वेष त्याग कर समता एवं वीतरागी बनना होगा; क्योंकि सही मायने में वीतरागता ही धर्म है।

सेठ लक्ष्मीलाल को अपने उद्योग–धंधों और व्यापार में अति व्यस्तता के कारण धर्मग्रन्थों को पढ़ने और उनमें से वीतराग मार्ग के संबंध में शोध–खोज करने एवं परलोक के संबंध में सोचने का तो अभी समय ही कहाँ ? जब भी उनसे कोई प्रवचन में आने या स्वाध्याय करने की बात कहता तो उसका एक ही उत्तर होता है –''अरे भाई ! अभी तो मरने की भी फुर्सत नहीं है। हाँ, हमारे लायक कहीं/कोई काम हो तो कहना, आवश्यकतानुसार हम आपका तन–मन–धन से सहयोग करने को तैयार हैं।''

सचमुच देखा जाए तो वास्तविक बात यह है कि उसे आत्मा–परमात्मा और परलोक के विषय में न कुछ जानकारी है और न कुछ जिज्ञासा ही है। उसने इतनी दूरदृष्टि से कभी सोचा ही नहीं है। धार्मिक कार्यों में धन खर्च करने से ही उसे सर्वाधिक सम्मान मिलता रहा, इसकारण न्याय/अन्याय से पैसा कमाने व धर्म के नाम पर खर्च करने में ही उसकी रुचि बढ़ती गई।

सेठ लक्ष्मीलाल के जितने भी पारमार्थिक ट्रस्ट हैं, वे कथन मात्र ही परमार्थ के हैं; वस्तुत: तो वे सभी भोग–सामग्री की प्राप्ति, उसी भोग सामग्री के संरक्षण एवं भोगों की पुष्टि के लिए ही हैं। अत: उसका तो स्पष्ट अशुभ आर्तध्यान ही है, जिसका फल पशु योनि है।

ज्ञानेश ने सोचा – 'उस बेचारे को कुछ पता तो है ही नहीं कि **–मेरे जो ये भाव हो रहे हैं, इनका फल क्या होगा ?** अत: ऐसा कोई उपाय अवश्य सोचना पड़ेगा, जिससे सेठ लक्ष्मीलाल धर्म की सही वस्तुस्थिति को समझ सके। धर्म का मर्म पहचाने। सेठ को मार्गदर्शन देने का अभी सभी प्रकार से अनुकूल अवसर है, यदि यह अवसर चूक गये तो.....।''

सेठ लक्ष्मीलाल ज्ञानेश के पिता का सबसे घनिष्ठ मित्र था। वह ज्ञानेश के पड़ौस में ही रहता था। घर जैसे ही संबंध थे उन दोनों परिवारों में।

यद्यपि सेठ लक्ष्मीलाल अपने गाँव में भी आर्थिक दृष्टि से खूब सम्पन्न था, कोई कमी नहीं थी उसे वहाँ; पर वह महत्त्वाकांक्षी बहुत था। अत: बीस वर्ष पहले व्यापार के विस्तार के लिए वह उद्योगनगरी बम्बई में पहुँच गया था। वहाँ भाग्योदय से अमेरिका जैसे विकसित देश से व्यापारिक संबंध बढ़ाने में सफल हो गया। फलस्वरूप वह दस–बारह वर्ष में ही टाटा–बाटा जैसे उद्योगपतियों की श्रेणी में खड़ा हो गया।

ज्ञानेश सोचता है – ''अब सेठ के पास आय के इतने अधिक स्रोत हो गये कि यदि वह अपने शेष अमूल्य जीवन का एक क्षण भी उद्योग धंधों में न दे तो भी उसकी आय पर और उद्योग–धंधों पर कोई विपरीत प्रभाव नहीं पड़ेगा; क्योंकि उसके व्यापार को सुचारू रूप से चलाने के लिए उसके पास योग्यतम कार्यकर्त्ता एवं कर्मचारी तो हैं ही, उसके पुत्र–पौत्र भी उससे अधिक कुशल हो गये हैं और पूरी जिम्मेदारी से काम संभालने लगे हैं।

सेठ को डॉक्टर ने पूर्ण विश्राम करने का परामर्श दिया है। उसे दो बार तो हार्ट–अटैक हो चुका है। पर पता नहीं, वह अपनी जान को जोखिम में डालकर अब ऐसा क्यों करता है ? मना करने पर भी क्यों नहीं मानता ? जैसा उत्साह और लगन पैसा कमाने में है, काश ! वैसी ही रुचि और लगन आत्मा के कल्याण की होती तो.....?

यदि सेठ आत्मकल्याण का यह अवसर चूक गया तो पुन: ऐसा सुअवसर पाना असंभव नहीं तो दुर्लभ तो हो ही जायेगा। लगता है सेठ की होनहार ही खोटी है; अन्यथा ये दिन कोई ऐसी मोह–ममता में पड़े रहने और ऐसे बिना मतलब के काम करने के थोड़े ही हैं।

किसी की कोई मजबूरी हो; रोटी, कपड़ा और मकान की समस्या हो तो बात जुदी है; पर उसके साथ ऐसा कुछ भी तो नहीं है।

बम्बई नगर में तो सेठ लक्ष्मीलाल के कोठी–बंगले हैं ही, देश–विदेश के प्रमुख औद्योगिक नगरों में भी पोतों के डायमण्ड हाउस बन गये हैं।

यदि सेठ चाहे तो चौबीसों घंटे फ्री रह सकता है और अपना पूरा समय धर्म–ध्यान में लगा सकता है; परन्तु वह धर्म–ध्यान की ओर बिल्कुल ध्यान नहीं देता है। उसे तो परिग्रह संग्रह और उसके प्रदर्शन में ही आनन्द आता है।

हृदयाघात के रोगी होने पर भी सेठ अपने आगंतुक अतिथियों को अपना कारोबार, कोठी–बंगले तथा चारों ओर बिखरा वैभव घंटों घूम–घूमकर नीचे–ऊपर चढ़–उतरकर दिखाता है। बीच–बीच में बिना कारण ओ रामू ! अरे श्यामू !! की आवाजें लगा–लगाकर अपने अतिथियों को

अपने चेतन परिग्रह का अहसास भी कराता रहता है।

यद्यपि धन का होना परिग्रह पाप नहीं है, परन्तु धन में ममत्व एवं सुखबुद्धि परिग्रह पाप है, सेठ लक्ष्मीलाल का भी जो धन में ममत्व है, उसके प्रदर्शन में उसे जो आनन्द आता है, वह आत्मपरिणाम ही परिग्रह पाप है। अपने पाप–पुण्य के भावों की पहचान के अभाव के कारण सेठ इस पाप से बच नहीं पाया।

बेचारे आगंतुक भी सेठ का मनोविज्ञान समझते हैं। अत: न चाहते हुए भी सच्ची–झूठी हाँ में हाँ मिलाते सेठ की मुस्कान में अपनी नकली मुस्कान मिलाते, जल्दी ही छुटकारा पाने के लिए कोई न कोई बहाना खोजते; पर सेठ की पकड़ जोंक से कम थोड़े ही थी, जो आसानी से छूट जाये।

सेठ लक्ष्मीलाल चाय–नाश्ता के बहाने रहा–सहा वैभव भी दिखाकर ही दम लेता। ऐसा करते सेठ शरीर से भले थक जाए, पर मन से कभी नहीं थकता; क्योंकि इसमें उसे आनन्द जो आता है।

सेठ जिसे अपना सौभाग्य समझे बैठा है, भाग्योदय माने बैठा है; वही उसके लिए दुर्भाग्य बनकर, क्रूर काल बनकर उसे कब धर दबोचेगा ह्न इसकी उसे कल्पना भी नहीं है। उसे नहीं मालूम कि यह परिग्रहानन्दी, विषयानन्दी रौद्रध्यान है, प्योर पाप का भाव है जिसका फल नरक है।

ज्ञानेश ने स्वयं भी सेठ को एक–दो बार स्वाध्याय करने और प्रवचनों में सम्मिलित होने की प्रेरणा दी और मौके–मौके पर आश्रम में पधार कर आध्यात्मिक ज्ञानार्जन करने का आग्रह भी किया।

ज्ञानेश के सत्संग से धीरे–धीरे सेठ के विचारों में परिवर्तन तो हो रहा था; परन्तु जिस गति से उम्र मौत की ओर ले जा रही थी, उस गति से बदलाव नहीं आ पा रहा था; आये दिन राज–काज के काम और सामाजिक संस्थाओं की देखभाल। इन सबसे समय बचे तब स्वाध्याय की सूझे न ?

ज्ञानेश ने कहा –''लक्ष्मी काका ! आपका परिचय और प्रेम ही तो हमें परेशान करता है और इसी कारण हम लोगों को आपसे बारम्बार यह कहने का विकल्प आता है कि आप स्वाध्याय किया करें, सेमीनारों में, शिविरों में आकर लाभ लिया करें; पर आप तो हमारी बात पर ध्यान ही नहीं देते।''

सेठ की बातों से ज्ञानेश उसके इस मनोविज्ञान को समझने लगा था कि इसे आदर–सन्मान चाहिए, आमंत्रण चाहिए। इसलिए जो उसको विशेष आयोजनों में आदरपूर्वक बुलाता है, वहाँ वह दौड़ा–दौड़ा चला जाता है। अत: उसने सोचा – ''क्यों न सेठ को किसी शिक्षण–शिविर के उद्घाटन में मुख्य–अतिथि बनाकर बुलाया जाये ? एकबार यहाँ आकर यहाँ का वातावरण देखेगा, वैराग्यवर्द्धक और दु:ख निवारक प्रवचन सुनेगा, श्रोताओं की भीड़ देखेगा तो संभव है सेठ को स्वाध्याय करने की लगन लग जाये। कभी–कभी भीड़ से भी लोग प्रभावित होते हैं। एकबार तत्त्वज्ञान प्राप्त करने की रुचि जाग्रत हो गई तो फिर फुर्सत की समस्या नहीं है। फिर तो फुर्सत ही है। समाज और राज–काज के काम तो शौक के हैं, करे न करे, क्या फर्क पड़ता है ? पर सेठ बिना विशेष आमंत्रण के नहीं आयेगा ; अत: विशेष आमंत्रण तो भेजना ही होगा।''

बड़ा सेठ, बड़ा विद्वान, बड़ा नेता या बड़ा अभिनेता – कोई भी बड़ा नामधारी व्यक्ति हो, यदि वह तत्त्वज्ञान विहीन हो तो उसे 'बड़प्पन' नाम की बीमारी हो ही जाती है। फिर वह छोटे छोटे प्रवचनकारों को तो गिनता ही नहीं है। इस कारण ऐसे बड़े लोगों का सबसे बड़ा दुर्भाग्य यह होता है कि उनके तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के अवसर दुर्लभ हो जाते हैं।

जबतक कोई किसी बड़े कार्यक्रम में अतिथि–विशेष बनाकर इन बड़े लोगों को न बुलाये, तब तक वे वहाँ जा नहीं सकते। बुलाये जाने पर पहुँच जाने के बाद भी पूरे समय नहीं ठहरते। उन्हें लगता है – ''अधिक देर तक रुकने से कहीं छोटा न समझ लिया जाऊँ।'' यह सोचकर दूसरों को सुने बिना अपना भाषण देकर भाग जाते हैं; पर सेठ लक्ष्मीलाल तो ज्ञानेशजी को सुनने की भावना से ही आया था सो अंत तक बैठा रहा।

शिविर का उद्घाटन समारोह प्रारंभ हुआ। सेठ लक्ष्मीलाल मुख्य अतिथि के पद पर आसीन थे। शिक्षण–शिविरों की आवश्यकता एवं उपयोगिता पर बोलते हुए ज्ञानेश ने कहा – **''देखो भाई ! जब कोई व्यक्ति दो–चार दिन की यात्रा पर घर से बाहर जाता है तो वह नाश्ता–पानी और पहनने–ओढ़ने के कपड़ों की व्यवस्था करके तो जाता ही है। कब, कहाँ ठहरना है, वहाँ क्या व्यवस्था होगी? इसका भी पहले से ही पूरा सुनियोजन करता है।**

जब ट्रेन में एक रात बिताने के लिए महीनों पहले से रिजर्वेशन कराये जाते हैं, होटलों में हजार–हजार रुपया रोज के कमरे बुक कराते हैं; तो हमारी समझ में यह बात क्यों नही आती कि इस जन्म से अगले जन्मों की अनन्तकालीन लम्बी यात्रा करने के लिए भी कहीं/कोई रिजर्वेशन की जरूरत है ? जिसका रिजर्वेशन इस धूल–मिट्टी के धन से नहीं, बल्कि धर्म के धन से होता है, पुण्यबंध के हेतुभूत शुभभावों से होता है।

अरे भाई ! साठ–सत्तर साल के इस मानवजीवन को सुखी बनाने के लिए जब लम्बी–लम्बी सात–सात पीढ़ियों के लिए प्लानिंग करते हैं। स्थायी आमदनी रायल्टी सिस्टम के नये–नये बिजनिस करने की योजनायें बनाते हैं तो उसकी तुलना में **अनन्त काल के भावी जीवन की लम्बी यात्रा के बारे में हम क्यों नहीं सोचते कि उसको सुखमय बनाने के लिए हम क्या करें ? क्या कर रहे हैं ?** इसका भी लेखा–जोखा कभी किया है हमने ? यदि इस जन्म की व्यवस्था जुटाने से ही फुर्सत नहीं मिली है तो आगे की सोचो कैसे ? अत: दोनों जन्मों की प्लानिंग हमें एकसाथ ही करना है।

भविष्य को सुखमय बनाने की बात तो बहुत दूर की है, अभी तो वर्तमान के सुखाभास के चक्कर में ही हम आर्त–रौद्रध्यान रूप खोटा ध्यान करके अपने भविष्य को अंधकूप में धकेलने का ही काम कर रहे हैं; अत: यह बात गंभीरता से विचारणीय है। **(क्रमश:)**

जैनतिथि दर्पण

जैनतिथि दर्पण

तत्त्वचर्चा

प्रवचनसार का सार 61

– डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल

(गतांक से आगे ...)

तदनन्तर आत्मज्ञानशून्य के सर्व आगमज्ञान, तत्त्वार्थश्रद्धान तथा संयतत्त्व का युगपत्पना भी अकिंचित्कर है – यह उपदेश करनेवाली २३९वीं गाथा इसप्रकार है –

परमाणुपमाणं वा मुच्छा देहादिएसु जस्स पुणो।
विज्जदि जदि सो सिद्धिं ण लहदि सव्वागमधरो वि।।२३९।।

(हरिगीत)

देहादि में अणुमात्र मूर्च्छा रहे यदि तो नियम से।
वह सर्व आगम धर भले हो सिद्धि वह पाता नहीं।।२३९।।

जिसके शरीरादि के प्रति परमाणुमात्र भी मूर्च्छा वर्तती हो तो वह भले ही सर्वागम का धारी हो, तथापि सिद्धि को प्राप्त नहीं होता।

आगम की महिमा गाते-गाते आचार्यदेव सावधान करते हुए कहते हैं कि सर्वागम का धारी होने पर भी यदि देहादि के प्रति परमाणुमात्र भी मूर्च्छा है तो वह सिद्धि को प्राप्त नहीं होगा।

मूर्च्छा का अर्थ है ममत्व परिणाम – एकत्वबुद्धि-ममत्वबुद्धि।

यहाँ मैं एक बात पर ध्यान आकर्षित कराना चाहता हूँ कि यहाँ आचार्यदेव ने देहादि के प्रति मूर्च्छा की बात पर वजन दिया है। यहाँ तक कि रागादि के प्रति भी मूर्च्छा की बात नहीं की। यदि देहादिक में मूर्च्छा है, तो मूर्च्छा में भी मूर्च्छा है। यदि देह के प्रति मूर्च्छा का निषेध हो गया, तो विकारी पर्याय अर्थात् रागादि के प्रति मूर्च्छा का भी निषेध हो गया और पर का भी निषेध हो गया।

तात्पर्य यह है कि आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्त्व के साथ-साथ आत्मज्ञान के होने की शर्त भी है।

समसत्तुबंधुवग्गो समसुहदुक्खो पसंसणिंदसमो।
समलोट्ठकंचणो पुण जीविदमरणे समो समणो।।२४१।।

(हरिगीत)

कांच-कंचन बन्धु-अरि सुख-दुःख प्रशंसा-निन्द में।
शुद्धोपयोगी श्रमण का समभाव जीवन-मरण में।।२४१।।

जिसे शत्रु और बन्धुवर्ग समान है, सुख और दुःख समान है, प्रशंसा और निंदा समान है, जिसे लोष्ट (मिट्टी का ढेला) और सुवर्ण समान है तथा जीवन-मरण के प्रति समानता का परिणाम है, वह सच्चा श्रमण है।

इसी गाथा का अनुवाद छहढाला की छठवीं ढाल के छठवें छन्द में इसप्रकार किया है –

अरि मित्र महल मसान कंचन काँच निंदन थुति करन।
अर्घावतारन असिप्रहारन में सदा समता धरन।।

तदनन्तर 'आगमज्ञान-तत्त्वार्थश्रद्धान-संयतत्त्व के युगपत्पने के साथ आत्मज्ञान के युगपत्पने की सिद्धिरूप जो यह संयतपना है, वही मोक्षमार्ग है, जिसका दूसरा नाम एकाग्रता लक्षणवाला श्रामण्य है' इसका समर्थन करनेवाली गाथा 242 इसप्रकार है –

दंसणणाण चरित्तेसु तीसु जुगवं समुट्ठिदो जो दु।
एयग्गगदो त्ति मदो सामण्णं तस्स पडिपुण्णं।।२४२।।

(हरिगीत)

ज्ञानदर्शनचरण में युगपत सदा आरूढ़ हो।
एकाग्रता को प्राप्त यति श्रामण्य से परिपूर्ण हैं।।२४२।।

जो दर्शन, ज्ञान और चारित्र इन तीनों में एक ही साथ आरूढ है; वह एकाग्रता को प्राप्त है – इसप्रकार शास्त्रों में कहा है। उसके ही परिपूर्ण श्रामण्य है।

तदनन्तर, 'अनेकाग्रता के मोक्षमार्गपना घटित नहीं होता' – यह दर्शानेवाली गाथा 243 इसप्रकार है –

मुज्झदि वा रज्जदि वा दुस्सदि वा दव्वमण्णमासेज्ज।
जदि समणो अण्णाणी बज्झदि कम्मेहिं विविहेहिं।।२४३।।

(हरिगीत)

अज्ञानि परद्रव्याश्रयी हो मुग्ध राग-द्वेषमय।
जो श्रमण वह ही बाँधता है विविध विध के कर्म सब।।२४३।।

यदि श्रमण, अन्य द्रव्य का आश्रय करके अज्ञानी होता हुआ, मोह करता है, राग करता है, अथवा द्वेष करता है, तो वह विविध कर्मों से बंधता है।

इसके बाद, एकाग्रता वह मोक्षमार्ग है – ऐसा निश्चित करते हुए मोक्षमार्गप्रज्ञापन अधिकार का उपसंहार करते हैं –

अट्ठेसु जो ण मुज्झदि ण हि रज्जदि णेव दोसमुवयादि।
समणो जदि सो णियदं खवेदि कम्माणि विविहाणि।।२४४।।

(हरिगीत)

मोहित न हो जो लोक में अर राग-द्वेष नहीं करें।
वे श्रमण ही नियम से क्षय करें विध-विध कर्म सब।।२४४।।

यदि श्रमण पदार्थों में मोह नहीं करता, राग नहीं करता, और न द्वेष को प्राप्त होता है तो वह नियम से विविध कर्मों को खपाता है।

इसप्रकार चरणानुयोगसूचक चूलिका में मोक्षमार्गप्रज्ञापन नामक दूसरा अन्तराधिकार समाप्त होता है। ●

तेईसवाँ प्रवचन

प्रवचनसार परमागम में समागत चरणानुयोगसूचक चूलिका में शुभोपयोगप्रज्ञापन नामक अवान्तर अधिकार पर चर्चा हो रही है।

सर्वप्रथम, समझने की बात यह है कि हम लोग जो ऐसा समझते हैं कि मुनिराज दो प्रकार के होते हैं – एक शुद्धोपयोगी तथा दूसरे शुभोपयोगी, पर ऐसा नहीं है। एक ही मुनिराज के कभी शुद्धोपयोग होता है तथा कभी शुभोपयोग होता है। यह एक ही मुनिराज के दो उपयोग की बात है; क्योंकि इस गाथा में स्पष्ट लिखा है कि धर्म से परिणमित स्वरूपवाले आत्मा के ये भेद हैं। शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी – ये भेद धर्मात्माओं के हैं; धर्म से परिणमित मुनिराजों के हैं।

जो नग्न दिगम्बर हैं, अट्ठाईस मूलगुणों का पालन करते हैं, प्रत्येक

अन्तर्मुहुर्त में शुद्धोपयोग में जाते हैं – ऐसे मुनिराज जब शुद्धोपयोग में जाते हैं, तब शुद्धोपयोगी हैं तथा जब छटवें गुणस्थान में जाते हैं, तब शुभोपयोगी हैं।

यह बात बहुत स्पष्ट है कि चाहे वे शुद्धोपयोग में हो या शुभोपयोग में – तीन कषाय चोकड़ी के अभावरूप निर्मल परिणति सदा विद्यमान होने से वे धर्मात्मा ही हैं। शुद्धोपयोगी और शुभोपयोगी – ये एक ही व्यक्ति के दो रूप हैं तथा ये भेद तो समझाने के लिये किए गए हैं।

इस शुभोपयोगप्रज्ञापन नामक अधिकार में यही कहा गया है कि शुद्धोपयोग और शुभोपयोग – ये दोनों ही एक ही व्यक्ति में संभव है।

मैं तो यह भी बताना चाहता हूँ कि शुभोपयोगी मुनिराज तो वे कुन्दकुद भी थे, जिन्होंने समयसार लिखा तथा यदि आचार्य अमृतचन्द्र शुभोपयोग में नहीं आते, तो हमें आत्मख्याति भी उपलब्ध नहीं होती।

जो शुद्धोपयोगी हैं, वे मोक्ष को प्राप्त करेंगे तथा जो शुभोपयोगी हैं, वे स्वर्गसुख को प्राप्त करेंगे। गाथा में शुद्धोपयोगी को निरास्रव तथा शुभोपयोगी को सास्रव कहा है अर्थात् शुद्धोपयोगी आस्रव से रहित हैं तथा शुभोपयोगी आस्रव से सहित हैं। यहाँ आचार्य यह बता रहे हैं कि भले ही शुभोपयोग शुद्धोपयोग के साथ हो; लेकिन वह शुभोपयोग बंध का ही कारण है और शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है। तद्भवमोक्षगामियों का शुभोपयोग भी बंध का ही कारण है।

यहाँ आचार्यदेव इस बात का ज्ञान कराना चाहते हैं कि मुनिराज को शुभोपयोग में देखकर उनका निषेध कर दें – यह भी सही नहीं है तथा शुभोपयोग को मुक्ति का कारण मानना भी उचित नहीं है।

यद्यपि जिनवाणी में शुभोपयोग को परम्परा से मोक्ष का कारण कहा है, व्यवहारनय से मुक्ति का कारण कहा है; लेकिन उसका अर्थ यह है कि वास्तव में शुभोपयोग मुक्ति का कारण नहीं है। 'शुभोपयोग परम्परा से मुक्ति का कारण है' इसका तात्पर्य यह है कि यह जीव अगले भवों में मोक्ष जाएगा तथा इससे अर्थ यह निकलता है कि इस भव में मोक्ष नहीं जाएगा। 'शुभोपयोग से परम्परा से मोक्ष मिलेगा' अर्थात् साक्षात् नहीं मिलेगा अर्थात् इस भव में मोक्ष नहीं मिलेगा। 'शुभोपयोग परम्परा से मुक्ति का कारण है' यह निषेध करने की सभ्य भाषा है।

इस प्रकरण में अभी तक एक बात अच्छी तरह स्पष्ट हो चुकी है कि एक ही मुनि कभी शुभोपयोगी होते हैं तथा कभी शुद्धोपयोगी होते हैं तथा दोनों ही अवस्था में वे 3 कषाय चौकड़ी से रहित शुद्धपरिणति से युक्त होते हैं। उनका शुभोपयोग बंध का कारण है तथा शुद्धोपयोग मोक्ष का कारण है।

इसके बाद, शुभोपयोगी श्रमण का लक्षण बतानेवाली अगली गाथा इसप्रकार है –

अरहंतादिसु भत्ती वच्छलदा पवयणाभिजुत्तेसु।
विज्जदि जदि सामण्णे सा सुहजुत्ता भवे चरिया।।२४६।।

(हरिगीत)

वात्सल्य प्रवचनरतों में अर भक्ति अर्हत् आदि में।
बस यही चर्या श्रमणजन की कही शुभ उपयोग है।।२४६।।

श्रामण्य में यदि अर्हन्तादि के प्रति भक्ति तथा प्रवचनरत जीवों के प्रति वात्सल्य पाया जाता है तो वह शुभयुक्त चर्या (शुभोपयोगी चारित्र) है।

इस गाथा में आचार्य ने दो बातें ग्रहण की हैं – प्रथम तो अरहंतो के प्रति भक्ति और दूसरी प्रवचन में प्रेम रखनेवालों के प्रति वात्सल्य।

जिसप्रकार लौकिक क्षेत्र में कुछ लोग अपने से बड़े होते हैं, कुछ बराबरी के होते हैं तथा कुछ छोटे होते हैं। हमारे माता–पिता, मामा–मामी, बुआ–फूफा, बड़े भाई व गुरुजन अध्यापक आदि बड़े लोग हैं। मित्रजन बराबरी के और अनुज व पुत्रादि छोटे होते हैं। मित्रजनों में भी कुछ छोटे और कुछ बड़े होते हैं। इसप्रकार लौकिक व्यवहार के लिए हम उन्हें दो भागों में ही बाँटते हैं – छोटे और बड़े।

उसीप्रकार इस गाथा में आचार्य से लेकर अरहंतों तक को एक श्रेणी में लिया, उनके प्रति मुनिराज भक्ति करते हैं तथा अपनी बराबरी एवं छोटे लोगों से वात्सल्य रखते हैं। यह अर्हन्तादि के प्रति भक्ति और प्रवचनरत जीवों के प्रति वात्सल्यरूप शुभभाव है।

गृहस्थ दशा में यदि पिताजी और माताजी मिथ्यादृष्टि हो तथा बेटा सम्यग्दृष्टि हो; तब भी बेटा अपने माता–पिता के पैर छुएगा, उचित सेवा–सम्मान करेगा; लेकिन यह वह पारिवारिक संबंध की वजह से कर रहा है, धर्म के कारण नहीं कर रहा है। ऐसा करने से उसे शुभाशुभ भावों के अनुसार पुण्य–पाप होगा एवं धर्म नहीं होगा; परन्तु मुनि अवस्था में यह नहीं हो सकता; क्योंकि उन्होंने तो समस्त व्यावहारिक संबंधों का परित्याग करके दीक्षा ले ली है। जब उन्होंने दीक्षा ली थी; उसीसमय अपने माता–पिता से यह कह दिया था कि न तुम मेरे माँ–बाप हो और न मैं तुम्हारा बेटा। अतएव मुनि दीक्षा लेने के बाद उनसे माँ–बाप जैसा व्यवहार नहीं होगा।

इसप्रकार जो चारित्र में तथा धर्म में बड़े हैं, उनके प्रति मुनिराज भक्ति करते हैं तथा धर्म में जो अपने से छोटे हैं, उनके प्रति वात्सल्यभाव रखते हैं। यह भक्ति और वात्सल्य शुभोपयोगरूप है। **(क्रमशः)**

दीपावली मंगलमय हो

दीपावली पर दीप जलेंगे, रोशनी होगी घर–आंगन में।
पाप–पुण्य अंधकार को नाशो, रोशनी करो निज अंतर में।।
वह बहुत बड़ी है दुनिया पर, काम बड़ा क्या दुनिया में।
लीन हुये महावीर स्वयं में, काम बडा था वो जग में।।
मंगलमय मंगल था अवसर, जो चले गये वन जंगल में।
गणधर गौतम ने जो काम किया, श्रेष्ठ वही है जीवन में।।
ललकार रहे हैं वो हमको, क्यों भटक रहे हो भव वन में।
महलों में है रोशनी पर, अंधकार तो हमारे तन मन में।।
यह पावन बेला पर संकल्प हमारा है आगाह करेंगे जन–जन में।
हो मंगलमय यह दीपावली, कुछ ऐसा करेंगे जीवन में।।

– अमितकुमार जैन, गुना (म.प्र.), छात्र–शास्त्री तृतीय वर्ष

17 अक्टूबर 2006, मूल्य : 2/- आर. एन. आई. 31109/77 RJ / J. P. C / FN-064 / 2006-08

चिन्तन की गहराई और अनुभूति को अभिव्यक्त करता है

डॉ. भारिल्लजी द्वारा राम के संवेदनशील मन को प्रस्तुत करने वाली कृति **पश्चात्ताप (खण्डकाव्य)** को पढ़कर **संहितासूरि पण्डित नाथूलालजी शास्त्री, इन्दौर** से लिखते हैं -

''**पश्चात्ताप** खण्डकाव्य के रचयिता ख्याति प्राप्त तत्त्ववेत्ता विद्वान डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल हैं। यह महत्त्वपूर्ण करुण रस सुबोध काव्य कविवर के **चिन्तन की गहराई और अनुभूति को अभिव्यक्त करता है।**

करोड़ों भक्तों के हृदय में बसनेवाले भगवान राम और भगवती सीता के जीवन की अनेक घटनाओं में से 'पश्चात्ताप' की इस विशिष्ट घटना को चुनकर कवि ने श्रीराम के हृदय की विशालता और अपने हृदय की सरलता को उजागर किया है। श्रीराम गर्भवती एकाकी सीता को भयानक जंगल में छुडवाने के पश्चात् सन्ताप करते रहे।

लव-कुश उत्पन्न होने और अग्नि परीक्षोत्तीर्णता के पश्चात् सीता ने संसार से विरक्त होकर आर्यिका दीक्षा ग्रहण कर जीवन सार्थक बनाया। इस काव्य में इन सबका भावपूर्ण चित्रण है। उक्त पति-पत्नी के अपार धैर्य, गांभीर्य, सहिष्णुता, संवेदनशीलता एवं अद्भुत मनोबल तथा अंत में शांत रस युक्त रचना पठनीय है।''

साप्ताहिक गोष्ठियाँ सानन्द सम्पन्न

1. श्री टोडरमल दिगम्बर जैन सिद्धान्त महाविद्यालय, जयपुर की रविवारीय गोष्ठियों की शृंखला में दिनांक 15 सितम्बर, 06 को '**दसलक्षण पर्व के अनुभव**' विषय पर गोष्ठी का आयोजन किया गया, जिसकी अध्यक्षता डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल ने की।

अध्यक्षीय उद्बोधन में डॉ. भारिल्ल ने छात्रों को पर्व के अवसरों पर ध्यान देने योग्य बातों पर मार्गदर्शन दिया। मंगलाचरण रजित जैन ने एवं संचालन अतुल जैन ललितपुर ने किया।

2. इसी शृंखला में दिनांक 17 सितम्बर, 06 को '**देव-शास्त्र-गुरु : एक अनुशीलन**' विषय पर आयोजित गोष्ठी की अध्यक्षता पण्डित धर्मेन्द्रजी शास्त्री, जयपुर ने की। गोष्ठी में प्रथम स्थान आशीष जैन मडावरा व द्वितीय स्थान अभिषेक जोगी ने प्राप्त किया। संचालन रमेश शिरहट्टी व मंगलाचरण ऋषिकेश जैन ने किया।

3. इसी शृंखला में दिनांक 24 सितम्बर को '**पंचभाव : एक तत्त्व विचार**' विषय पर आयोजित हुई; जिसकी अध्यक्षता डॉ. नरेन्द्रजी शास्त्री, जयपुर ने की। श्रेष्ठ वक्ता के रूप में शास्त्री वर्ग से प्रसन्न शेटे कोल्हापुर व उपाध्याय वर्ग से अक्षय जैन पिड़ावा चुने गये।

संचालन जिनेन्द्र नंदेश्वर नन्दगाँव व मंगलाचरण अनेकान्त दिवाकर ने किया। **- रोहन रोटे व अंकुर जैन**

वैराग्य समाचार

1. **लुहारदा निवासी श्री माणिकचन्दजी पाटोदी** का दिनांक 2 अक्टूबर को शांत परिणामोंपूर्वक देहावसान हो गया। आपने अपने पिता श्री हीरालालजी पाटोदी से प्राप्त धर्म संस्कारों को अपने जीवन में उतारा तथा वे ही संस्कार अपने परिवार को भी दिये। आप अनेक बार सोनगढ़ जाकर गुरुदेवश्री के प्रवचनों का लाभ लिया करते थे तथा जयपुर व देवलाली के शिविरों में भी धर्मलाभ लेने हेतु जाते रहते थे।

2. **करहल निवासी** पण्डित वीरेन्द्रकुमारजी कुमुद की धर्मपत्नी **श्रीमती महेन्द्रमालतीजी** का दिनांक 17 सितम्बर को देहावसान हो गया। आप अत्यन्त सरलस्वभावी आध्यात्मिक रुचि सम्पन्न महिला थीं। स्वाध्याय-तत्त्वचर्चा आदि आपके दैनिक जीवन का अभिन्न अंग था। आपकी स्मृति में श्री चिद्रूप जैन की ओर से वीतराग-विज्ञान हेतु 500/- रुपये प्राप्त हुये।

दिवंगत आत्मायें शीघ्र ही चतुर्गति के दु:खों से छूटकर निर्वाण की प्राप्ति करें - यही भावना है। **- प्रबन्ध सम्पादक**

डॉ. भारिल्ल के आगामी कार्यक्रम

19 से 23 अक्टूबर, 2006	**देवलाली**	**महावीर निर्वाणोत्सव**
13 से 19 नवम्बर, 06	**दिल्ली**	**विद्वत्परिषद-शिविर**
30 नव. से 6 दिसम्बर, 06	**बांसवाड़ा**	**पंचकल्याणक**
31 दिस. से 4 जनवरी, 07	**देवलाली**	**विधान**
25 से 31 जनवरी, 07	**बीना**	**पंचकल्याणक**
02 से 06 फरवरी, 07	**मंगलायतन**	**वार्षिकोत्सव**
15 से 21 फरवरी, 07	**अलवर**	**पंचकल्याणक**

साधना चैनल पर रात्रि 10.20 से डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर के प्रवचनों को देखना/सुनना न भूलें।

प्रति,

सम्पादक : **पण्डित रतनचन्द भारिल्ल** शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्यरत्न, एम.ए., बी.एड.
प्रबन्ध सम्पादक : **पण्डित संजीवकुमार गोधा,**डबल एम.ए.जैनविद्या व धर्मदर्शन-इतिहास, नेट एवं **पण्डित जितेन्द्र वि.राठी,** साहित्याचार्य
प्रकाशक एवं मुद्रक : **ब्र. यशपाल जैन** द्वारा जैनपथप्रदर्शक समिति के लिए जयपुर प्रिण्टर्स प्रा.लि., एम. आई. रोड, जयपुर से मुद्रित तथा त्रिमूर्ति कम्प्यूटर्स, ए-4, बापूनगर, जयपुर से प्रकाशित।

यदि न पहुँचे तो निम्न पते पर भेजें -
ए- 4 बापूनगर, जयपुर - 302015 (राज.)
फोन : (0141) 2705581, 2707458
फैक्स : (0141) 2704127